बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 51

नीतिगत सुधार जरूरी

व्यापार क्षेत्र के नए आंकड़े देश के निर्यात और आयात के बारे में कुछ दिलचस्प जानकारी प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए कमजोर रुपये की बदौलत मार्च 2019 में निर्यात साल दर साल आधार पर 11 फीसदी बढ़ा। यह पिछले कई महीनों में वृद्धि का सबसे ऊंचा आंकड़ा है। कुल 30 में से 20 उत्पादों के निर्यात में बढ़ोतरी देखी गई। इनमें रसायन, औषधि और पेट्रोलियम उत्पाद शामिल हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि 2018-19 में देश का निर्यात डॉलर के संदर्भ में मामूली रूप से ही सही बेहतर रहा। यह बेहतरी कई वर्ष के ठहराव के बाद आई है। बहरहाल, जीडीपी के प्रतिशत के रूप में निर्यात की गति बेहतर नहीं रही। मार्च 2019 में व्यापार घाटा 1090 करोड़ डॉलर रहा, यह पिछले महीने की तुलना में 13 करोड़ डॉलर अधिक था। हालांकि 2018-19 में निर्यात में सुधार हुआ लेकिन आयात कहीं अधिक तेजी से बढ़ा। यही वजह है कि 2018-19 का व्यापार घाटा 17,600 करोड़ डॉलर रहा जबकि ठीक एक वर्ष पहले यह 16,100 करोड़ डॉलर था।

मार्च के कारोबारी आंकडों में एक दिलचस्प बात और रही जिसका उल्लेख विश्लेषकों ने किया है। यदि तेल एवं सोने को इन व्यापारिक आंकड़ों से बाहर कर दिया जाए तो शेष प्रमुख कारोबारी संतुलन एक किस्म के अधिशेष का प्रदर्शन करता है। फरवरी 2014 के बाद यह पहला मौका है जब आंकड़ों की ऐसी प्रस्तुति में घाटा नदारद है। हालांकि अभी यह कहना जल्दबाजी होगी कि पांच वर्ष की लंबी अवधि से चली आ रही निर्यात की कमजोरी दूर हो गई है लेकिन यह बात ध्यान देने लायक है कि इस क्षेत्र में थोड़ी राहत नजर आ रही है। निर्यातकों के संगठन दावा कर रहे हैं कि यह सुधार ऐसे वक्त में हुआ है जबकि दक्षिण पूर्वी एशिया की प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था वाले देश धीमी निर्यात वृद्धि से दो चार हैं। ऐसे में जाहिर है यह दोहरे जश्न का मौका है। बहरहाल, यह मामला पूरी तरह निर्यात का नहीं है। सरकार ने इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं के आयात से निपटने का प्रयास किया है। इसके लिए शुल्क वृद्धि का इस्तेमाल किया गया है और देश में इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं के निर्यात में लगातार दूसरे महीने कमी भी आई है। ऐसे प्रश्न भी पूछे जाने चाहिए कि घरेलू मांग की क्या स्थिति है क्योंकि साल दर साल आधार पर आयात केवल 1.4 फीसदी बढ़ा। भारतीय रिजर्व बैंक यकीनन इन आंकड़ों पर भी ध्यान देगा।

बहरहाल, अभी एक नए और स्वस्थ भुगतान संतुलन का जश्न मनाना जल्दबाजी होगा। बाह्य खाते के मोर्चे पर देश की अर्थव्यवस्था के जो संवेदनशील पहलू हैं, उन्हें अभी हल किया जाना बाकी है। जब कच्चे तेल की कीमतों में दोबारा इजाफा होगा तो इसमें दो राय नहीं है कि भुगतान संतुलन पर भी नए सिरे से दबाव उत्पन्न होगा। वैश्विक कीमतों में वृद्धि और भारत में बढ़ी मांग के चलते इसका आयात पहले ही मार्च में 5.55 फीसदी बढ़कर 1175 करोड़ डॉलर तक पहुंच चुका है। घरेलू मांग में सुधार होने से भी ऐसा ही होगा। इससे तेल एवं गैर-तेल दोनों क्षेत्रों के बिल में पर्याप्त इजाफा होगा जिसकी भरपाई करना आसान नहीं होगा। अपनी जरूरत का 80 फीसदी कच्चा तेल आयात करने वाले भारत के लिए इन बाहरी कारकों से बचने का एक ही तरीका है और वह यह कि हम भारतीय निर्यात में स्थायी सुधार लाने का प्रयास करें। हमें इस वृद्धि को विभिन्न प्रक्रियाओं और सुधारों की मदद से स्थायित्व और प्रतिस्पर्धी भी बनाना होगा। वस्तु एवं सेवा कर प्रणाली को लेकर जो सुधार किए गए हैं, वह भी अगली सरकार को राह दिखाने का काम करेंगे बशर्ते कि निर्यात में स्थायी रूप से सुधार लाने की उसकी मंशा हो।

अजय मोहंती

बेहतर बदलाव योजना से बनेगा काम

अगर 2019 के आम चुनाव के तत्काल बाद से बेहतर जानकारी के साथ बहस मुबाहिसे शुरू हों तो वर्ष 2022-23 तक आर्थिक सुधारों को बेहतर ढंग से अंजाम दिया जा सकता है। बता रहे हैं **अजय शाह**

चुनाव के बाद का बदलाव काफी कठिनाई भरा और महत्त्वपूर्ण होता है। चूंकि देश के संस्थान काफी कमजोर हैं। इसलिए काफी कुछ व्यक्तित्वों पर निर्भर करता है। पिछले वक्त का काफी कर्ज एकत्रित हो चुका है जिससे निपटने के लिए मांग पर ध्यान देने और संसाधन जुटाने की आवश्यकता है। ऐसे में बेहतर है एक ऐसी टीम तैयार की जाए जो घोषणापत्र, न्यूनतम साझा कार्यक्रम (सीएमपी), बदलाव टीम और अन्य शुरुआती कदमों पर ध्यान दे।

भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) आगामी आम चुनाव जीते या नहीं लेकिन अगले पांच वर्ष काफी अलग होने वाले हैं। वर्ष 2009 में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) दोबारा चुनाव जीतने में कामयाब रहा लेकिन संप्रग-2 की प्रकृति काफी अलग थी। ऐसे में अगर सन 2014 में बनी सरकार में कोई खास मंत्रालय संभालने वाला व्यक्ति 2019 में भी पद पर बना रहता है तो भी वह बदल चुका होगा। 2019 में उसके तौर-तरीके एकदम अलग होंगे। चुनावों के बाद अक्सर कैबिनेट और अधिकारियों के व्यवहार के स्तर में बदलाव देखने को मिलता है।

चुनाव नतीजे आ जाने के बाद मीडिया में विजेताओं के प्रशस्तिगान का दौर चलेगा। फिजा में खास किस्म का उत्साह होगा। कई लोग यह भी मानेंगे एक खास अवधि तक नई टीम से कोई सवाल नहीं किया जाएगा। हालांकि उनमें बदलाव की समस्या अपने आप में एक समस्या है।

भारत में संस्थान कमजोर हैं और यही वजह है कि यहां व्यक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है। नए लोगों को पूरा परिदृश्य समझने में वक्त लगता है। कई अनुभवी नौकरशाह एक नियम का पालन अवश्य करते हैं, वह यह कि काम के पहले छह महीनों के दौरान बहुत कम बोला जाए। जब संस्थान कमजोर हों तो व्यक्तियों और संस्थानों के बीच के रिश्ते कमजोर पड़ जाते हैं।

इन शुरुआती छह महीनों का क्या महत्त्व है? शुरुआती छह महीनों के दौरान अधिक बौद्धिकता का प्रदर्शन किया जा सकता है क्योंकिमेहनत का फल हासिल करने के लिए आगे चार वर्ष से अधिक समय होता है। इससे जटिल सुधार लागू करने का वक्त मिलता है और अर्थव्यवस्था भी ऐसे बदलाव सहन कर जाती है।

उदाहरण के लिए संरक्षणवाद को शुरुआती कुछ सप्ताह में समाप्त किया जा सकता है। यह राजनीतिक रूप से सहज होता है। पहले वर्ष में उन लोगों को शिकायत हो सकती है जो कम कम दर से प्रभावित हों लेकिन बाद के चार वर्ष के दौरान संसाधनों के सुधरे हुए आवंटन और उत्पादकता का लाभ लिया जा सकता है। इस हिसाब से देखें तो जून से सितंबर 2019 वर्ष 2019 की पहेली शुरुआती कुछ सप्ताह में ही हमें ढेर सारी जानकारी देने वाली है। उसके आधार पर ही सन 2022/2023 तक आर्थिक उभार की बुनियाद रखी जाएगी।

तीन तरह की गलतियां करने से बचना होगा। पहली गलती यह मानना है कि नीतिगत मसलों से निपटने के लिए अल्पावधि के कदम ही उठाए जाने चाहिए। जून 2019 में आईएलऐंडएफएस को लेकर नीतिगत प्रतिक्रिया जून 2018 की तुलना में एकदम अलग होगी।

दूसरी गलती है, मीडिया के बहकावे में आ जाना और समय से पहले यह दावा करने लगना की आर्थिक दिक्कतें दूर हो गई हैं। हमें अपनी ही प्रेस विज्ञाप्तियों पर यकीन नहीं करना चाहिए। तीसरी गलती है, कठिन और दूरगामी सुधारों को अंजाम न देना।

राजकोषीय, वित्तीय और मौद्रिक नीति सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये साथ मिलकर कंपनियों के लिए निवेश का वातावरण तैयार करती हैं। निजी तौर पर लोग नीतिगत प्रक्रिया पर नजर रखते हें और सुधार की संभावनाओं पर प्रतिक्रिया देते हैं। जब नीति निर्माता टीम और विचारों का प्रदर्शन करते हैं तो अर्थव्यवस्था को तेजी से लाभ होता है क्योंकि निजी तौर पर लोग आर्थिक माहौल को लेकर अधिक आशावादी होते जाते हैं। 2019 और 2020 में नीतिगत मोर्चे पर मजबूत प्रदर्शन होने पर निजी निवेश में भी सुधार देखने को मिलेगा। आर्थिक सुधारों के विचार और टीमें चक्रीय नीति का मुकाबला करने के लिए सबसे बेहतर हैं।

राजनीतिक दल शुरुआती छह महीनों का सर्वश्रेष्ठ इस्तेमाल कैसे कर सकते हैं? यह काम बेहतर नियोजन से ही हो सकता है। उदाहरण के लिए अमेरिका में बदलाव की प्रक्रिया अक्टूबर में शुरू होती है, चुनाव नतीजे नवंबर में आते हैं और नई टीम जनवरी में काम संभाल लेती है। नई टीम के काम तक का समय सीमा शुल्क दर हटाने, डेटा का स्थानीयकरण करने और एफडीआई सीमाओं के लिए अच्छा मौका है।

समय बीतने के साथ-साथ निर्णय प्रक्रिया के लिए कम वक्त बचता है क्योंकि चुनाव करीब आते जाते हैं। इससे एक किस्म का नीतिगत बोझ उत्पन्न होता है। चीनी उद्योग, आईएलऐंडएफएस, जेट एयरवेज, आईडीबीआई, बैलेंस शीट से इतर राजकोषीय परिचालन आदि समस्याओं से चुनाव के पहले के आखिरी वर्ष में अल्पावधि के उपायों के जरिए निपटा जाता है। इस तरह के बकाया मसलों से अगली सरकार की टीम को निपटना होगा।

चुनाव के तुरंत बाद का समय ऐसा होता है जब नई टीम अपने आपको लेकर विश्वस्त नहीं होती लेकिन उसे पिछले एक या दो वर्ष से लटके नीतिगत मसलों से निपटना होता है और उसके पास इतना पर्याप्त समय होता है कि वह उनका लंबी अवधि का हल तलाश कर सके। ऐसी परिस्थितियों में सर्वश्रेष्ठ काम का उदाहरण है जुलाई 1991 में दिया गया बजट भाषण।

जब संस्थान कमजोर होते हैं तो व्यक्तिगत स्तर पर लिए गए निर्णय नीति बन जाते हैं। हम जून या जुलाई तक बौद्धिक क्षमता, टीम की सुसंगतता, और प्रमुख व्यक्तियों की भूमिका के आधार पर सरकार के अगले पांच वर्ष के प्रदर्शन का अनुमान लगा सकते हैं। संभालने के पहले चार महीने के विकास कार्य व्यवस्थित होते हैं। हमारे देश में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। हमारे यहां मई के अंत में सरकार बनेगी और जुलाई तथा उसके बाद फरवरी में बजट पेश किया जाएगा।

हम बेहतर प्रदर्शन कैसे कर सकते हैं? चुनाव घोषणापत्र के आगमन के बाद अभियान शुरू हो जाते हैं और इस बीच सत्ता संभालने की मानसिक तैयारी भी शुरू हो जाती है। अतीत में गठबंधन सरकारों ने न्यूनतम साझा कार्यक्रम पर बातचीत की। यह बातचीत नीतिगत प्रश्नों पर ध्यान केंद्रित करती है। बेहतर घोषणापत्र का विकास, न्यूनतम साझा कार्याक्रम की बेहतर शर्तों की वजह बनता है और इस प्रकार बेहतर नीति तैयार होती है। पहले वर्ष के लिए एक पूर्ण नियोजन प्रक्रिया की आवश्यकता है ताकि काम के क्षेत्र तय किए जा सकें और कार्य योजना और विशेषज्ञता को लेकर काम किया जा सके।

जनरल आइजनहॉवर ने एक बार कहा था कि योजना अपने आप में बेकार हो सकती है लेकिन सारा अंतर नियोजन से उत्पन्न होता है। चुनाव नतीजे आने के पहले राजनीतिक दलों को नियोजन की प्रक्रिया पर काम करना चाहिए। इससे न केवल मनसिकता तैयार होगी बल्कि प्रमुख व्यक्तियों में क्षमता का विकास भी होगा। इससे वास्तविक काम शुरू होने पर प्रदर्शन सुधरा हुआ मिलेगा।

घोषणापत्र को मजाक बना देता है चुनाव आयोग का रवैया

बाअदब

सोमशेखर सुंदरेशन

चुनाव घोषणापत्र एक ऐसा रस्मी दस्तावेज है जिसके बारे में कोई भी फिक्रमंद नहीं होता है। न तो घोषणापत्र जारी करने की समयसीमा तय करने वाला नियामक और न ही मतदाता चिंतित होता है

हम दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र हैं। हम चुनावों के निरंतर 'स्वतंत्र एवं निष्पक्ष' संपन्न होने पर काफी गर्व महसूस करते हैं। आम तौर पर हरेक साल देश में कहीं-न-कहीं चुनाव होता ही रहता है। फिर भी चुनाव घोषणापत्र जैसा बुनियादी मुद्दा भी इतने बुरे ढंग से संचालित किया जाता है कि समूची चुनाव प्रक्रिया एक मजाक बनने के कगार पर पहुंच जाती है।

एक सार्वजनिक अनुबंध का मूलभूत अवयव यह है कि अनुबंध को आकार देने वाली प्रतिज्ञा एवं दो पक्षों के बीच की प्रतिज्ञा साफ तौर पर समझ में आ रही हो, उन्हें अच्छी तरह समझाया जा सके और आम जनता 'जानकारी पर आधारित फैसला' ले सके। जब कोई कंपनी प्रारंभिक सार्वजनिक निर्गम (आईपीओ) के जरिये पैसे जुटाती है तो उसे एक 'प्रॉस्पेक्टस' जारी करना होता जिसमें उसे अपनी कारोबारी गतिविधियों और भावी योजनाओं के बारे में जानकारी देनी होती है। उस कंपनी को इस पेशकश से जुड़े जोखिमों के बारे में भी बताना होता है।

फिर भी जब सभी सार्वजनिक अनुबंधों में सबसे ऊपर माने जाने वाले चुनाव का मामला आता है तो 'प्रॉस्पेक्टस' जैसी अहमियत रखने वाले दस्तावेज से संबंधित नियमन की स्थिति काफी दयनीय है। ऐसा तब है जब चुनाव से ही तय होता है कि हम अपने भाग्य-विधाता के रूप में किसे चुन रहे हैं? चुनावी प्रक्रिया का नियमन देश का सर्वाधिक ताकतवर नियामक भारत का चुनाव आयोग करता है जो एक संवैधानिक निकाय भी है। इसके बावजूद चुनाव की जान कही जाने वाली सार्वजनिक प्रतिज्ञा के इतने अहम हिस्से के नियमन को लेकर उथले एवं लापरवाही भरे रवैये के चलते भड़काऊ एवं अस्वीकार्य नतीजे सामने आते हैं।

भारतीय गणराज्य के सातवें दशक के अंत में जाकर इस साल चुनाव आयोग ने घोषणापत्र जारी करने के लिए 48 घंटे की समयसीमा लागू की है। एक चुनाव सुधार के रूप में इस कदम की प्रशंसा की गई है। लेकिन इसका यह मतलब भी है कि आयोग की नजर में मतदाता के लिए किसी दल का घोषणापत्र पढ़ने, उसे समझने और उससे सहमत होने पर उस दल को अपना मत देने का फैसला करने के लिए महज 48 घंटे ही काफी हैं। चुनाव आयोग से कम शक्तियां रखने वाले नियामक भी सार्वजनिक दस्तावेज रखने वाले पक्षों को इससे अधिक समय देने के लिए कहते हैं। मसलन, एक प्रतिभूति की पेशकश के दौरान मसौदा प्रॉस्पेक्टस को लोगों के लिए ऑनलाइन पोस्ट करना पड़ता है।

घोषणापत्र में जो भी वादे किए गए हों लेकिन चुनाव नतीजों की घोषणा होने के बाद उस घोषणापत्र में किए गए किसी भी वादे के लिए उस दल को जवाबदेह नहीं ठहराया जा सकता है। ऐसे में बहुत नाराज होने पर मतदाता केवल इतना ही कर सकता है कि वह उस दल को अगले चुनाव में वोट न दे। कोई भी घोषणापत्र यह जिक्र भी नहीं करता है कि पार्टी उस घोषणापत्र में किए गए वादों को नकार सकती है या उनमें संशोधन कर सकती है। संक्षेप में कहें तो किसी पार्टी के घोषणापत्र का असल में कोई मतलब ही नहीं होता है। चुनाव घोषणापत्रों में 'न्यूनतम साझा कार्यक्रम' की संभावना को लेकर कभी भी कोई चेतावनी नहीं दी जाती है। वहीं अगर कोई कंपनी प्रॉस्पेक्टस में कहती है कि वह किसी खास मकसद से धन जुटा रही है लेकिन बाद में वह उस राशि का इस्तेमाल किसी अन्य मकसद से करेगी तो उसके लिए पैसे जुटाना काफी भारी हो जाएगा। किसी भी सत्ताधारी दल के चुनाव घोषणापत्र में ऐसे बिंदु नहीं होते हैं जो यह दिखाएं कि पिछले घोषणापत्र में किए गए वादों के बरक्स उसने कितने वादों को लागू किया है। वादा बनाम प्रदर्शन का यह पहलू हरेक नियामकीय परिवेश का एक अनिवार्य पहलू है लेकिन चुनावों में यह नदारद होता है।

संक्षेप में, चुनाव घोषणापत्र एक ऐसा रस्मी दस्तावेज है जिसके बारे में कोई भी फिक्रमंद नहीं होता है। न तो घोषणापत्र जारी करने की समयसीमा तय करने वाला नियामक और न ही सारे चुनावी वादों को एक जगह देखने की इच्छा रखने वाला मतदाता ही चिंतित होता है। ऐसे में अधिक वास्तविक व्याख्या शायद यही होगी कि चुनावों के दौरान घोषणापत्र जारी करना ही बंद कर दिया जाए। हालांकि पूंजी बाजार में भी कोई निवेशक शायद ही प्रॉस्पेक्टस पढ़ता है। लिहाजा किसी को भी प्रॉस्पेक्टस की भूमिका को लेकर बहुत चिंतित नहीं होना चाहिए। अगर आप सच में प्रॉस्पेक्टस में यकीन करते हैं तो इसका मतलब है कि आप यह मानते हैं कि सहारा के साथ जो कुछ भी हुआ, वह उसके लिए रत्तीभर भी जिम्मेदार नहीं थी।

सहारा के खिलाफ दायर मुकदमे का आधार ही यह था कि उसने शेयरों के जरिये निवेशकों से फंड जुटाने की कवायद के दौरान कोई प्रॉस्पेक्टस ही नहीं जारी किया था। इस चर्चा के केंद्र में रहने वाला चुनाव घोषणापत्र महज मजाक बनकर रह गया है। यह चुनाव नियमन करने वाली संस्था चुनाव आयोग के निष्क्रिय रवैये और मतों के बाजार में जुटे बेफिक्र मतदाताओं के रवैये को भी बयां करता है। कुछ राजनीतिक दलों का घोषणापत्र बनाने के पहले व्यापक सार्वजनिक विमर्श करना तारीफ के लायक है। यह बेहद निष्ठुरता ही होगी अगर दलों को अपने कथित घोषणापत्र के बारे में अधिक चिंता न हो। अगर 'अंपायर' निर्वाचन प्रक्रिया के इस अहम दस्तावेज के नियमन की जरूरत नहीं समझता है तो वह दिन अधिक दूर भी नहीं है।

(लेखक एक वरिष्ठ अधिवक्ता एवं स्वतंत्र परामर्शदाता हैं)

कानाफूसी

राफेल : नाम में बहुत कुछ

छत्तीसगढ़ के एक छोटे से गांव के लोग इन दिनों एक अलग तरह की मुश्किल का सामना कर रहे हैं। इस गांव के लोग आसपास के गांवों के लोगों के लिए मजाक का विषय बन गए हैं। यह गांव अपने नाम की वजह से चर्चा में है। भले ही इस गांव के लोगों का लड़ाकू विमान राफेल के मामले से कोई लेनादेना नहीं हो लेकिन गांव की चर्चा इसलिए हो रही है क्योंकि इस गांव का नाम ही राफेल है। वर्तमान में लोकसभा चुनाव चल रहे हैं और चुनावी मौसम में राफेल विमान का मुद्दा भी गर्म है। ऐसे में इस गांव के लोगों को भी मीडिया में बार-बार अपने गांव का नाम सुनने को मिल रहा है। जानकारी के मुताबिक गांव के कुछ लोग अब इसका नाम बदलवाना चाहते हैं। लोग मजाक में यह तक कहने लगे हैं कि अगर कांग्रेस की सरकार बनती है तो कहीं इस गांव पर जांच न बैठ जाए।

मेनका की चेतावनी

केंद्रीय मंत्री और भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) की लोकसभा प्रत्याशी मेनका गांधी पिछले दिनों सुल्तानपुर में दिए गए एक भाषण के बाद चर्चा में थीं। गांधी ने अपने भाषण में अल्पसंख्यकों को संबोधित करते हुए कहा था कि अगर वे उनको वोट नहीं देते हैं तो किसी काम से उनके पास नहीं आएं। यह वीडियो सोशल मीडिया पर वायरल हो गया और इसके लिए उनकी जमकर आलोचना भी हुई। अब उनका एक दूसरा वीडियो वायरल हुआ है जहां वह अपनी पार्टी के आईटी सेल को इस बात के लिए आड़े हाथों ले रही हैं कि वह उनका बचाव नहीं कर पाया। वह आईटी सेल को भंग करने की धमकी देती हुई भी नजर आईं। वीडियो में वह कह रही हें कि अभी चुनाव अभियान शुरू ही हुआ है और आगे ऐसे कई मौके आएंगे जब राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी उनको निशाना बनाएंगे। वह आईटी सेल कर्मियों से कह रही हैं कि अगर वे अपने तरीके नहीं बदलते तो उनकी कोई उपयोगिता ही नहीं है।

आपका पक्ष

सरकारी अस्पतालों की सेहत सुधारिए

सरकार का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक नागरिक को सर्वोत्तम स्वास्थ्य सेवा मुहैया कराए। इसलिए सरकार अलग-अलग योजनाओं के जरिये देश के मध्यवर्गीय और गरीब नागरिकों को स्वास्थ्य सेवा देने का प्रयास कर रही है। आयुष्मान भारत योजना सरकार द्वारा घोषित बेहतरीन कार्यक्रम है। धरातल पर इसका क्रियान्वयन सफलतापूर्वक किया जा रहा है। देश में निजी स्वास्थ्य सेवा और सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा दोनों अपनी सेवाएं दे रहे हैं। निजी स्वास्थ्य सेवा पैसों के बदले सेवा दे रही है। लेकिन सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा की स्थिति अब भी दयनीय और गंभीर है, क्योंकि जरूरत के अनुसार सरकारी अस्पतालों की कमी है। यह बात मध्यवर्गीय और गरीब लोगों को महसूस होती है। सरकारी अस्पतालों में मूलभूत चीजों की कमी है। उपचार के दौरान मरीज को बेड मिलना

आसान नहीं होता है। कई मरीज घंटों लाइन में खड़े रहते हैं। सरकारी अस्पतालों में डॉक्टरों की कमी है क्योंकि जरूरत के हिसाब से डॉक्टरों की नियुक्ति नहीं हो पाती है। इससे अन्य डॉक्टरों पर काम का बोझ बढ़ जाता है। उनमें कई तरह की दवाइयां मुफ्त में मिलती हैं लेकिन कई दवाइयां निजी दुकानदारों से लेनी पड़ती

देश में बीमार पड़ी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा का उपचार करने की जरूरत है

हैं। एक गरीब व्यक्ति महंगी दवा खरीदने में सक्षम नहीं होता है। इससे कई बार उसे अपना उपचार अधूरा छोड़ना पड़ता है। ग्रामीण इलाकों के सरकारी अस्पताल का इससे भी बुरा हाल है। अत: जो अधिकार देश के नागरिकों को दिए गए हैं, वे दिखावे के हैं। जब तक देश के प्रत्येक नागरिक को गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवा नहीं मिलेगी, तब तक देश तरक्की नहीं कर सकेगा। अगर व्यक्ति का स्वास्थ्य बेहतर नहीं रहेगा तो वह पूरी क्षमता से श्रम नहीं कर सकता। इससे देश के जीडीपी में उसका योगदान उम्मीद के मुताबिक नहीं रहेगा। इसलिए देश के सार्वजनिक अस्पतालों का स्वास्थ्य दुरुस्त करना जरूरी है। इसके लिए सरकार को अन्य स्वास्थ्य योजनाओं के अलावा सार्वजनिक स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए बजट बढ़ाना होगा। डॉक्टरों की पर्याप्त नियुक्तियां होनी चाहिए। नए अस्पतालों के लिए मंजूरी देना चाहिए और ग्रामीण इलाकों में डॉक्टरों की नियुक्ति होनी चाहिए।

निशांत महेश त्रिपाठी, नागपुर

न्याय योजना एक सार्थक कदम

लोकसभा चुनाव से पहले कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी द्वारा घोषित 'न्याय' योजना चर्चा का विषय बन गई है। इसके तहत देश के 20 प्रतिशत सबसे गरीब परिवारों को 6,000 रुपये प्रति माह दिए जाने का वादा किया गया है। हालांकि मासिक आय 12,000 रुपये तय की गई है। प्रथम दृष्टि में यह असंभव लगता है। हो सकता है कि अन्य क्षेत्रों में दी जाने वाली सब्सिडी समाप्त करके जो राजस्व बचेगा, उसे इस क्षेत्र में लगाया जाए। ऐसे प्रयास केवल भारत जैसे विकासशील देश में ही नहीं बल्कि अमेरिका जैसे विकसित देशों में भी किए जा रहे हैं। हालांकि वर्तमान में सभी के लिए रोजगार एक समस्या बनी हुई है। इसलिए इस प्रकार प्रदान की गई निश्चित आय गरीबी हटाने में सार्थक कदम साबित हो सकती है।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।